International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

भारतीय शास्त्रों में मन का स्वरूप – एक अध्ययन

नितेश कुमार मिश्र

एम.फिल(वैदिक अध्ययन) साँची बौद्ध – भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन (म.प्र)

सारांश–

मन अर्थात् एक ऐसा तत्व जो की स्वतंत्र सत्ता है जिसके होने से ही वह विषय वस्तुओं के प्रति सजग रहता है मन ही होता है विषय के प्रति आकर्षक होता है, और साथ ही वह उसमें लीन होकर उस वस्तु का भोग–उपभोग करता रहता है वह एकादश इन्द्रियं रूप में है, जो कि सभी जगह विद्यमान रहता है मन की चचंलता और उसकी क्रियाविधि दोनों ही निरंतर साथ–साथ चलती रहती है।

भारतीय शास्त्रों में मन से सम्बधित बहुत ही सहज रूप में उसके आयामों उसके गुणों के बारे में बताया गया है। जब से मानव की सत्ता विश्व में मानी जाती है तभी से उसके क्रियाकलापों का मूल मन ही रहा है। मानव की समग्र बाह्य चेष्टाओं के पीछे रहने वाली प्रेरक शक्ति मन है। मानव की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था भी मनोमूलक है। बाह्यजगत् और अन्तःजगत् का सेतु या उपकरण मानव का मन है। मानव के सुख–दुखः, पाप–पुण्य, शुभाशुभ, क्षति–बुद्धि यहाँ तक कि बन्ध्न और मोक्ष भी मनोमूलक कहे गये हैं।

वस्तुतः पुरुष का कर्त्तृत्व–भोक्तृत्व, सुख–दुःखादि धर्म चित्त मन के ही धर्म हैं।[2] मानव जीवन में मन का अपना विशिष्ट स्थान है क्योंकि आत्मा का मन करण है, उसी से आत्मा धर्म–अधर्म कार्यों में प्रवृत्त होता है।

मुख्य शब्द– मन, मन का अर्थ, मन के गुण।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

प्रस्तावना–

मन ही व्यक्ति का वह अन्तरंग साधन है जिससे वह सोचता है, समझता है, तर्क करता है, इच्छा करता है, संकल्प करता है, विविध वस्तुओं का अनुभव प्राप्त करता है। इन बौद्धिक अनुभवों के अतिरिक्त मनुष्य मन से प्रेम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि संवेगों का भी अनुभव करता है। मन के दो चेतन और अचेतन स्तर हैं। जब मानसिक क्रियाएँ होती हैं व्यक्ति को उसकी चेतना रहती है, उनके प्रति वह जागरुक रहता है। इस स्तर पर कार्य करने वाले मन को चेतन मन कहते हैं। जिन मानसिक क्रियाओं के समय मन बेखबर रहता है उस मन को अचेतन या अवचेतन मन कहते हैं।

मन का विषय प्रारम्भ से ही जिज्ञासु मानव को सोचने के लिए उद्वेलित करता रहा है। इस विषय में पूर्वी और पश्चिमी दोनों क्षितिज पर अपने–अपने ढंग से प्रयास हुए किन्तु इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम प्रयास भारतवर्ष में ही हुए, जिनका आदि संकलन वैदिक संहिताओं में हुआ। वैदिक ऋषियों के चिन्तन में हमें सर्वप्रथम मन के स्वरूप एवं इसके रहस्यों का ज्ञान मिलता है।

मन का अर्थ एवं परिभाषा–

मननात् मन उच्यते, मन्यते बुध्यते इति मनः[3] अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है वह 'मन' है। मन् धातु से असुन् प्रत्यय द्वारा मनस् शब्द निष्पन्न हुआ है।[4] इससे स्पष्ट है कि ज्ञान या बोध्न क्रिया के लिए प्रयुक्त होने वाली मन धतु से मनस् शब्द निर्मित हुआ है। यास्क ने अपने ग्रन्थ 'निरुक्त' में मनस् शब्द की व्युत्पत्ति मनु अववोधने से की है, जिसका तात्पर्य अववोधन, चिन्तन मनन आदि से है।[5] मन के अनेक पर्याय प्राचीन वाघ्मय में वर्णित हैं। वेदों में मनस्, चेतस्, चित्तम्, हृदय, संकल्प, आकूति, मेध, धृति, मति, मनीषा, काम, श्रद्धा, प्रज्ञान, संज्ञान आदि शब्द मन के लिए प्रयुक्त हैं। इन शब्दों के स्वतन्त्र अर्थ भी हैं। वैदिक मन के आधर पर ही अमरकोष में मन के पर्यायों में चित्त, चेतस्, हृदय, स्वान्त, हृद्, मानस, मन[6] तथा चरक संहिता में अतीन्द्रिय, मन, सत्त्व, चेतस् आदि पद उल्लिखित हैं।[7] इन शब्दों के अतिरिक्त मनस्, अन्तःकरण, उभयेन्द्रिय, इन्द्रियातीत आदि पर्याय भी उपलब्ध होते हैं। ये सभी पर्यायवाची शब्द अपना पृथक्–पृथक् विशिष्ट अर्थ रखते हैं। ऐसे पद जो एकार्थक माने जाते हैं, वे वस्तुतः भिन्न–भिन्न प्रकृति निमित्त के आधर पर प्रयुक्त होने वाले पृथक्–पृथक् स्वतन्त्र पद हैं भले ही आपाततः उनमें अर्थ सादृश्य प्रतीत होता है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

विभिन्न भारतीय शास्त्रों में मन की परिभाषा–

मन के संयम से इन्द्रियाँ वश में होती हैं एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।[8] जीवात्मा के शरीर में षोडश कलायें विद्यमान हैं उनमें मन भी एक कला है। यह मन मूल कारण से उत्पन्न है, ईश्वर रचित है एवं अचेतन है।[9]

संस्कृत वाङ्मय में दर्शनों का विशिष्ट स्थान है। सृष्टि के विभिन्न तत्त्वों पर पृथक्–पृथक् दर्शनों में ऋषियों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। दर्शनों में मन का वर्णन एक इन्द्रिय के रूप में किया गया है। मन के गुण, कर्म, स्वभाव, लक्षण, परिभाषा दर्शनशास्त्राों में पूर्णरूपेण वर्णित है।

वैशेषिक दर्शन में मन के विषय में निम्न बातों पर विचार किया गया है– मन द्रव्य है।[10] प्रति शरीर में एक मन है। आत्मा इन्द्रियों तथा घटपटादि अर्थों का युगपत् सम्बन्ध होने पर भी जो एक विषय में ज्ञान का सद्भाव तथा अन्य विषय में असद्भाव होता है वह मन की सिद्धि में लिङ्ग है। मन के संयोग से आत्मा का प्रत्यक्ष होता है।[11] मानसिक क्रियाओं का कारण आत्मा है। सुख एवं दुःख आत्मा, इन्द्रिय, मन और अर्थ के सन्निकर्ष से होते हैं। आत्मा और मन का इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होता। मन का परिमाण अणु है।[12]

सांख्य सिद्धान्तानुसार प्रकृति का महत् नामक जो कार्य उत्पन्न हुआ है वह मन है।[13] यह संकेत समष्टि मन की ओर है। व्यष्टि मन पृथक् है एवं वह संकल्प–विकल्प करने वाली इन्द्रिय है। मन का सम्पर्क ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों से होने के कारण यह मन उभयात्मक है। इसकी उत्पत्ति का मूल कारण प्रकृति है। सत्त्व, रजस् तथा तमस् की साम्यावस्था प्रकृति है, प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहंकार और अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ एवं मन की उत्पत्ति होती है।

मन सूक्ष्म शरीर का एक घटक है।[14] प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति ये मन की पाँच वृत्तियाँ हैं।[15] योगसूत्र प्राचीन मनोविज्ञान है। इसकी विशेषता यह है कि इस शास्त्र के सम्यक् ज्ञान से मानव जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि और चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग सरलतम और सुगम हो जाता है। योगसूत्र मन पर लिखा गया एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। जिसमें मन के लिए चित्त शब्द का प्रयोग है।[16]

ब्रह्मसूत्र में उल्लिखित है– पुरुष के प्रयाण करने के समय वाणी मन में विलीन हो जाती है, मन प्राण में, प्राण तेज में तथा तेज देवता में लीन होता है।[17] मन की वृत्तियाँ ही प्राण में विलीन होती है।

सुरेश्वराचार्य ने अन्तःकरण चतुष्टय का उल्लेख किया है। चेतन रूप चित्त है, संकल्प रूप मन है एवं निश्चय करने वाली बुद्धि है।[18]

पञ्चदशी में वृत्तिभेद से मन के दो भेद विमर्श रूप एवं निश्चयात्मिका बुद्धि रूप माना गया है।[19]

अद्वैत वेदान्त की परम्परा में ब्रह्म ही परमसत्य है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी सत्य नहीं। इस तरह मन की सत्ता भी भ्रम मात्र है, जो अज्ञान या भ्रम के कारण पैदा हुई है। माया द्वारा अनुकूलित मन ही जग का आधर है। आचार्य शंकर ने विविध कर्म विभाजन के कारण मन को– मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह नाम भेद स्वीकार किया है।[20] यह मन सूक्ष्म और आकार में सीमित है, मृत्यु के समय जब यह शरीर छोड़ता है तो दिखता नहीं है। यदि मन आकार में सीमित नहीं होता तो यह शरीर के अन्दर या बाहर आ–जा नहीं सकता था। मन की सत्ता भौतिक है एवं यह आत्मा के ज्ञान का एक यन्त्र है। इसके पाँच कार्य हैं– सही ज्ञान, विवेक, कल्पना, निद्रा और स्मृति।[21] अतः वेदान्त में मन या अन्तःकरण चेतना की अवस्थाओं की समग्रता का नाम भर है। वाणी को मन में, मन को बुद्धि में, बुद्धि को आत्मा में और आत्मा; साक्षीद्ध को पूर्ण ब्रह्म में लय करके परम शान्ति को प्राप्त करने की बात कही गई है।

बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदायों में विज्ञानवाद तो मन; बुद्धि को ही एकमात्र तत्त्व मानता है। विज्ञानवादी समग्र विश्व की व्याख्या इसी से करते हैं। बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ ध्म्मपद में तृतीय वर्ग चित्तवग्गो के नाम से प्रसिद्ध है।[22] जैन दर्शन में ज्ञान उल्लेख प्रसंग में मन की सत्ता मानी गई है।[23]

मन के गुण, कर्म एवं स्वभाव –

सत्त्व, रज और तम में मन के तीन सामान्य गुण हैं। मन प्रकृति का विकार होने से सत्त्वादि गुणों वाला है। मन में जिस गुण की प्रधनता होती है, उसी गुण से मन को कहा जाता है। महाभारत में धैर्य, तर्क, उपपत्ति, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना, क्षमा, शुभ एवं अशुभ संकल्प और चंचलता इन नव गुणों से मन को युक्त कह गया है।[24]

आस्तिकता, अक्रूरता, सुख–दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करना, सत्य, धर्म, ज्ञान, बुद्धि, मेधा, स्मृति, धैर्य और अनभिषङ्ग= निरिच्छा पूर्वक अच्छे कार्यों को करना ये सात्त्विक मन के गुण हैं।

दुःख बाहुल्य, घूमने का स्वभाव, अधैरता, अहंकार, असत्यभाषण, क्रूरता, दम्भ, मान, आनन्द, विषय सम्बन्धी इच्छा और क्रोध ये राजस मन के युग हैं।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

वेदादि को न मानना, खेद करना, काम करने की इच्छा न होना, बुद्धि का उपयोग न करना दुष्ट बुद्धि रहना, ज्ञान न होना, नींद लेने की इच्छा, मूढ़ता, सदैव क्रोध ये तामस मन के गुण हैं।

मन में इन प्राकृतिक गुणों के अतिरिक्त दो विशिष्ट गुण रहते हैं जिसे अणुत्व एवं एकत्व कहा जाता है।[25] परत्वापरत्वादि पञ्च वेगों का आधार भी मन है। जितने भी प्राकृतिक गुण एवं मानसिक दशायें है उनको पाश्चात्य मनस्तत्त्व वेत्ताओं ने संवेदन, संकल्प और विकल्प विचार के रूप में विभक्त किया है।

अमरकोष के धी वर्ग के अन्तर्गत बुद्धि, धी, मेध, चित्त के वर्णन के प्रसंग में संकल्प को मन का कर्म बताया गया है।[26] इन्द्रियाभिग्रह, स्वयं का निग्रह, उह्य एवं विचार मन के कर्म हैं।[27] परद्रोह करना, दूसरों के द्रव्यों को लेने की इच्छा और नास्तिकता ये मन के त्रिविध अशुभ कर्म हैं वैसे ही दया करना, स्पृहा न करना तथा श्रद्धा करना ये तीन मन के शुभ कर्म हैं।[28]

मन, वाणी तथा शरीर से जो कर्म होता है, उसके शुभ तथा अशुभ फल होते हैं। मन, वाणी तथा शरीर का अध्ष्ठाता जीवात्मा है। जीवात्मा मन के द्वारा किये गए कर्मों का फल मन से ही भोगता है और मानस दुष्कर्मों के कारण चाण्डालादि का जन्म लेना पड़ता है।[29]

अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है। मन इन्द्रियों द्वारा संचालित होकर सब विषयों की ओर जाता है। इन्द्रियाँ उन विषयों को नहीं देखती, मन ही उन्हें निरन्तर देखता है। चक्षु मन के सहयोग से ही रूप का दर्शन करती है, अपनी शक्ति से नहीं। जिस समय मन व्याकुल रहता है उस समय चक्षु देखता हुआ भी नहीं देख पाता है। भ्रम के कारण ही कहा जाता है कि सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विषयों का दर्शन करती हैं। इन्द्रियाँ कुछ नहीं देखती केवल मन ही देखता है। मन विषयों से उपरत हो जाये तो इन्द्रियाँ भी विषयों से निवृत्त हो जाती है परन्तु इन्द्रियों के उपरत होने पर मन में उपरति नहीं आती इस कारण सम्पूर्ण इन्द्रियों में मन प्रधन है।

भारतीय शास्त्रों में मन का स्वरूप–

प्राचीन भारतीय मनोविद्या में मनस्तत्त्व की सत्ता को एक स्वर से भारतीय शास्त्रा तथा चिन्तक स्वीकार करते हैं। मन की चार अवस्थाएँ हैं– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय। जाग्रत अवस्था में मन की वृत्ति चारों ओर फैली हुई होती है। मनुष्य जाग्रत अवस्था में देखता है, सुनता है, सूंघता है, चलता है। स्वप्न अवस्था में मनुष्य के अंग निश्चल हो जाते हैं। उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं, कान आदि इन्द्रियाँ काम नहीं

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

करती, शब्द को वह सुन नहीं सकता, गंध को सूंघ नहीं सकता, हाथ पैर शिथिल पड़ जाते हैं। स्वप्नावस्था में आँखें बन्द होने पर भी वह देखता है– ठीक ऐसे देखता है जैसे खुली आँखों से देखता है। स्वप्नावस्था के बाद सुषुप्ति की अवस्था आती है। सुषुप्ति में सब ज्ञान लुप्त हो जाता है। मनुष्य छः, सात घण्टे की सुषुप्ति के बाद जब जागता है तब वह कहता है– सुखमहमस्वाप्सम्– मैं बड़े आनन्द में सोया। ऐसा सोया कि कुछ भी पता नहीं रहा कोई स्वप्न तक नहीं आया। यह चेतना जो सदा जागरूक रहती है वह शरीर के बन्धनों को लांघकर जब जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तावस्था को परे छोड़कर, शरीर के बन्धनों से छूटकर इनके परे की तुरीयावस्था में पहुँच जाती है तब चेतना अपने यथार्थ स्वरूप में आ जाती है। चेतना के इसी रूप को पा लेना भारतीय शास्त्रों का लक्ष्य है।

भौतिक मनोविज्ञान इन्द्रियों की आँखों से देखता है। वैदिक मनोविज्ञान मन तथा आत्मा के आँखों से देखता है। इन दोनों दृष्टियों की व्यावहारिक उपयोगिता में अन्तर देखने को मिलता है। मन तथा आत्मा तो अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है।

भारतीय अध्यात्म विद्या का कार्य मन के साथ जूझना है। कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध क्षेत्र से श्रीकृष्ण ने मनोविज्ञान की भाषा बोलते हुए अर्जुन को स्थित प्रज्ञ का उपदेश करते हैं। यही भारतीयों का व्यावहारिक पक्ष है। वैदिक मनोविज्ञान संसार की सब समस्याओं को मन के क्षेत्र में लाकर रख देता है और यही कारण है कि वेदों से प्रेरित होकर भारत में योगदर्शन के नाम से एक शास्त्र का उदय हुआ जिसका काम ही मन को साधना था।

जीवन में मन का महत्त्व स्वीकार करने पर भी स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जिस मनस्तत्त्व का निरूपण किया जा रहा है वह मन प्रसिद्ध है अथवा अप्रसिद्ध, मन के विषय में क्या कोई सन्देह है अथवा नहीं? मनस्तत्त्व के स्वरूप के प्रतिपादन करने की इच्छा के मूल में क्या प्रयोजन है? क्योंकि जो वस्तु असंदिग्ध अथवा सन्देह रहित होती है अथवा जिसका प्रयोजन नहीं होता प्रेक्षावान् पुरुष उसके प्रतिपादन की इच्छा नहीं करते। यथा उज्ज्वल प्रकाश में विद्यमान घट जिससे मन और इन्द्रिय का सन्निकर्ष हो चुका है उस घट के विषय में किसी को सन्देह नहीं होता अतः ऐसा घट किसी भी बुद्धिमान पुरुष के प्रतिपादन की इच्छा का विषय नहीं होता। इसी प्रकार कौए के दाँत होते हैं अथवा नहीं? यह विषय किसी के लिए निष्प्रयोजन है तो वह पुरुष काकदन्त के प्रतिपादन में प्रवृत्त नहीं होता, परन्तु मनस्तत्त्व के विषय में सन्देह और प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

मन प्रायः सामान्य रूप से प्रसिद्ध तो है किन्तु उसके विशेष स्वरूप के विषय में सन्देह होने के कारण और उसके यथार्थ स्वरूप का निश्चय न होने के कारण उसके विशेष स्वरूप की जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है। शोध शीर्षक में मनस् पद का प्रयोग न करके मनस्तत्त्व पद का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया गया है। तत्त्व शब्द की व्युत्पत्ति **तस्य भावः तत्त्वम्।** अतः शोध प्रबन्ध में न केवल मन के स्वरूप का ही वर्णन किया जायेगा अपितु मन के गुण, धर्म, तथा मन के क्रियाकलापों आदि मनोविषयक सभी तथ्यों पर प्रकाश डाला जायेगा, इसी अभिप्राय से मनस् के साथ तत्त्व पद का प्रयोग किया गया है।

विचार–विमर्श

मनस्तत्त्व की सत्ता को एक स्वर से भारतीय शास्त्रा तथा चिन्तक स्वीकार करते हैं। मन की चार अवस्थाएँ हैं– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय। जाग्रत अवस्था में मन की वृत्ति चारों ओर फैली हुई होती है। मनुष्य जाग्रत अवस्था में देखता है, सुनता है, सूंघता है, चलता है। स्वप्न अवस्था में मनुष्य के अंग निश्चल हो जाते हैं। उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं, कान आदि इन्द्रियाँ काम नहीं करती, शब्द को वह सुन नहीं सकता, गंध को सूंघ नहीं सकता, हाथ पैर शिथिल पड़ जाते हैं। स्वप्नावस्था में आँखें बन्द होने पर भी वह देखता है– ठीक ऐसे देखता है जैसे खुली आँखों से देखता है। स्वप्नावस्था के बाद सुषुप्ति की अवस्था आती है। सुषुप्ति में सब ज्ञान लुप्त हो जाता है। मनुष्य छः, सात घण्टे की सुषुप्ति के बाद जब जागता है तब वह कहता है– सुखमहमस्वाप्सम्– मैं बड़े आनन्द में सोया। ऐसा सोया कि कुछ भी पता नहीं रहा कोई स्वप्न तक नहीं आया। यह चेतना जो सदा जागरूक रहती है वह शरीर के बन्धनों को लांघकर जब जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तावस्था को परे छोड़कर, शरीर के बन्धनों से छूटकर इनके परे की तुरीयावस्था में पहुँच जाती है तब चेतना अपने यथार्थस्वरूप में आ जाती है। चेतना के इसी रूप को पा लेना भारतीय शास्त्रों का लक्ष्य है।

उपसंहार–

भारत में मनोविद्या का स्वरूप सदा आध्यात्मिक बना रहा है। शरीर तथा आत्मा के, शरीर तथा मन के भेद को अनुभव कर लेना इसका सार है। वेद, दर्शन, उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थ निरन्तर इस तत्त्व की प्राप्ति का उपदेश करते हैं। भारतीय विचारधरा का हर पहलू आत्मतत्त्व या मनस्तत्त्व के विचार से ओतप्रोत रहा है। यह विचार नहीं था जो घर में कुर्सियों पर लेटे–लेटे दिमागी पुलाव पकाने के लिए, समय काटने के लिए खोजा गया था। इस विचार की भारतीय जीवन पर अमिट छाप थी। वैदिक ऋषियों ने अपने पास

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

बत्तीस–बत्तीस वर्ष शिष्यों को रखकर तरह–तरह के प्रयोगों से, आश्रमों की प्रयोगशालाओं में उनके हृदय में इस बात की सत्यता उतार दी थी कि संसार में जो कुछ है इन्द्रियों का, शरीर का खेल नहीं, मन का खेल है। सांसारिक सुख–दुःख का अनुभव इन्द्रियाँ नहीं करतीं, शरीर नहीं करता, मन करता है।

भारत में मनोविद्या का स्वरूप सदा आध्यात्मिक बना रहा है। शरीर तथा आत्मा के, शरीर तथा मन के भेद को अनुभव कर लेना इसका सार है। वेद, दर्शन, उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थ निरन्तर इस तत्त्व की प्राप्ति का उपदेश करते हैं। भारतीय विचारधारा का हर पहलू आत्मतत्त्व या मनस्तत्त्व के विचार से ओत प्रोत रहा है।

सन्दर्भ सूची–

1. पुरुषस्य कर्त्तृत्वभोक्तृत्व सुखदुःखादिलक्षणः चित् धर्मः क्लेशरूपत्वाद्बन्धे भवति। तन्निरोधः जीवन्मुक्तिः। उ.सं., मुक्तिकोपनिषद् 2.1
2. उ.सं., महोपनिषद् 4/123
3. मन ज्ञाने, मनु अवबोधने, मन स्तम्भे, धातुपाठ 4–67, 8.9, 10–169
4. निरुक्त, महर्षि यास्ककृत नैगमकाण्ड 4/1/5
5. चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः। अमरकोष 1/31 कालवर्ग
6. अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्त्वसज्ञकं चेत इत्याहुरेके। चरक, सूत्र स्थान 8:4
7. कठ. 3/6, 6/10
8. उ.सं., प्रश्नोपनिषद, प्रश्न–6, मुण्डक 2.1.3
9. पृथिव्यापस्तेजो.....दिगात्मा मन इति द्रव्याणि। वैशे. 1.1.5
10. आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम्। वैशे. 9.1.11
11. तदभावादणुः मनः। वही, 7.1.23
12. महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः। सांख्य. 1.71
13. सप्तदशैकं लिङ्गम्। वही, 3.9

14. वही, 2.33
15. यो.सू. 1.2
16. अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे, प्राणस्तेजसि, तेज परस्यां देवतायाम् इति। ब्रह्मसूत्रा 4.2.2
17. ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च। मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्। संकल्पाख्यं मनोरूपं बुद्धिनिश्चयरूपिणी। पञ्चीकरण वार्तिक, सुरेश्वराचार्य (उद्धृत वेदान्तसार से)
18. तैरन्तःकरणं सर्वेषुवृत्तिभेदेन तद् द्विध। मनो विमर्शरूपं स्यात् बुद्धि स्यान्निश्चयात्मिका। पञ्चदशी, तत्त्व विवेक प्रकरण, श्लोक–20
19. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य 2/3.32, 2/4.6
20. वही, 2.4.12
21. धम्मपद, चित्तवग्गो–1
22. तत्त्वार्थ सूत्रा, 1.9
23. धैर्योपपत्तिव्यक्तिश्च विसर्गः कल्पना क्षमा। सदसच्चाशुता चैव मनसो नव वै गुणाः। महा. शान्ति 255. 9
24. अणुत्वमथचैकत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ । च.शा.1.19
25. बुद्धिमनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः। प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः। धीर्धारणावती मेधा संकल्पः कर्ममानसम्। अमरकोष, प्र.का. 1 धी वर्ग
26. इन्द्रियाभिग्रह कर्म मनसस्तस्य निग्रहः। ऊहो विचारश्च ततः परं बुद्धि प्रकाशते। च.शा. 1–2
27. मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति। (शुभाप्रवृत्तिः) मनसा दयामस्पृहा श्रद्धा चेति। न्याय. 1. 1.2 वात्स्यायन भाष्य
28. मानसं मनसैवायमुपभुघ्क्ते शुभाशुभम्। मानसैरन्त्यजातिताम्। मनु. 12.8.9